

# मेरी क्रान्तिकारी योजना

(मद्रास के विक्टोरिया हॉल में दिया गया भाषण)



संस्करण — 2014-15

प्रकाशक

**મેવાડ વિશ્વવિદ્યાલય**

ગંગરાર, ચિત્તૌડગढ (રાજ.)

એન.સી.આર. કાર્યાલય

સેક્ટર-4સી, વસુન્ધરા, ગુજરાત

## प्राक्कथन

‘हम लोग शक्तिहीन हो गये हैं। इसीलिये गुप्तविद्या और रहस्य विद्या— इन रोमांचक वस्तुओं ने धीरे—धीरे हममें घर कर लिया है। भले ही उनमें अनेक सत्य हों, पर उन्होंने लगभग हमें नष्ट कर डाला है। अपने स्नायु बलवान बनाओ। आज में जिसकी आवश्यकता है, वह है—लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं।

अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और ‘मर्द’ बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सिद्धांतों की जरूरत है, जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें ऐसी सर्वांग सम्पन्न षिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी— जो भी तुमको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये उसे जहर की भाँति त्याग दो, उसमें जीवन—षक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो हृदय के अंधकार को दूर कर दे, जो हृदय में स्फूर्ति भर दे।’

ये विचार विष्व भर के नौजवानों के प्रतिनिधि व आदर्श स्वामी विवेकानन्द के हैं। मद्रास के विकटोरिया हॉल में दिये गये उनके भाषण का एक अंश है।



'मेरी कांतिकारी योजना' नाम से दिये गये इस भाषण ने पूरे हॉल में और उसके बाहर देष—विदेष में हलचल मचा दी थी। स्वामी विवेकानंद के षिकागो में दिये गये भाषण को तो सब याद करते हैं, लेकिन षिकागो से लौटने के बाद स्वामी विवेकानंद ने मद्रास में जो यह भाषण दिया, उसने सबकी आँखें खोल दी थीं। आज इसे पढ़ने की अत्यंत आवश्यकता है। हमारा मन है कि लोग, खासतौर से नौजवान छात्र—छात्रायें इसे एक बार अवश्य पढ़ें। इसी उद्देश्य से हमने इस भाषण को एक पुस्तक का स्वरूप देने का सद्प्रयास किया है। आपको हमारा यह सद्प्रयास पसंद आएगा, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ—

### आपका शुभेच्छु



डॉ. अशोक कुमार गद्या  
कुलाधिपति  
मेवाड़ विष्वविद्यालय  
गंगरार, चित्तौड़गढ़, राजस्थान  
एनसीआर कार्यालय  
सेक्टर 4सी, वसुंधरा, गाज़ियाबाद

“मेरे मित्रों, मेरा विचार है कि मैं भारत में कुछ उसे शिक्षालय स्थापित करूँ, जहाँ हमारे नवयुवक अपने शास्त्रों के ज्ञान में शिक्षित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने धर्म का प्रचार कर सकें। मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप



हो जायेगा। आवश्यकता है वीर्यवान्, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। उसे ऐसी मिल जायें, तो संसार का कायाकल्प हो जाये। इच्छाशक्ति संसार में सबसे अधिक बलवती है। उसके सामने दुनिया की कोई चीज़ नहीं ठहर सकती; क्योंकि वह भगवान् - साक्षात् भगवान् से आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमें विश्वास नहीं करते? सबके समक्ष अपने धर्म के महान् सत्यों का प्रचार करो, संसार इनकी प्रतीक्षा कर रहा है। सैकड़ों वर्षों के लोगों को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। संसार भर में सर्वत्र सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो।”

- स्वामी विवेकानन्द

# मेरी क्रान्तिकारी योजना

(मद्रास के विकटोरिया हॉल में दिया गया भाषण)

उस दिन अधिक भीड़ के कारण मैं व्याख्यान समाप्त नहीं कर सका था, अतएव मद्रास निवासी मेरे प्रति जो निरन्तर सदय व्यवहार करते आये हैं, उसके लिए आज मैं उन्हें अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। मैं यह नहीं जानता कि अभिनन्दन—पत्रों में मेरे लिए जो सुन्दर सुन्दर विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, उनके लिए मैं किस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ। मैं प्रभु से इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इन कृपापूर्ण तथा उदार प्रशंसाओं के योग्य बना दें और इस योग्य भी कि मैं अपना सारा जीवन अपने धर्म और मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर सकूँ; प्रभु मुझे इसके योग्य बनाये।

मैं समझता हूँ कि मुझमें अनेक दोषों के होते हुए भी थोड़ा साहस है। मैं भारत से पाश्चात्य देशों में कुछ सन्देश ले गया था, और उसे मैंने निर्भीकता से अमेरिका और इंग्लैण्डवासियों के सामने प्रकट किया। आज का विषय आरम्भ करने के पूर्व मैं साहसपूर्वक दो शब्द तुम लोगों से कहना चाहता हूँ। कुछ दिनों से मेरे चारों ओर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो रही हैं, जो मेरे कार्य की उन्नति में विशेष रूप से विघ्न डालने की चेष्टा कर रही हैं; यहाँ तक कि, यदि सम्भव हो सके, तो वे मुझे एकबारगी कुचलकर मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर डालें। पर ईश्वर को धन्यवाद कि ये सारी चेष्टाएँ विफल हो गयी हैं, और इस प्रकार की चेष्टाएँ सदैव विफल ही सिद्ध होती हैं। मैं गत तीन वर्षों से देख रहा हूँ, कुछ लोग मेरे एवं मेरे कार्यों के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त धारणाएँ बनाये हुए हैं। जब तक मैं विदेश में था, मैं चुप रहा; मैं एक शब्द भी नहीं बोला। पर आज मैं अपने देश की भूमि पर खड़ा हूँ, मैं स्पष्टीकरण के रूप में कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। इन शब्दों का क्या फल

होगा, अथवा ये शब्द तुम लोगों के हृदय में किन—किन भावों का उद्रेक करेंगे, इसकी मैं परवाह नहीं करता। मुझे बहुत कम चिन्ता है; क्योंकि मैं वही सन्यासी हूँ, जिसने लगभग चार वर्ष पहले अपने दंड और कमंडल के साथ तुम्हारे नगर में प्रवेश किया था, और वही सारी दुनिया इस समय भी मेरे सामने पड़ी है।

बिना और अधिक भूमिका के मैं अब अपने विषय को आरम्भ करता हूँ। सबसे पहले मुझे थियोसॉफिकल सोसायटी के सम्बन्ध में कुछ कहना है। यह कहने की आवश्यता नहीं कि उक्त सोसायटी से भारत का कुछ भला हुआ है और इसके लिए प्रत्येक हिन्दू उक्त सोसायटी और विशेषकर श्रीमती बेसेंट का कृतज्ञ है। यद्यपि मैं श्रीमती बेसेंट के सम्बन्ध में बहुत कम ही जानता हूँ पर जो कुछ भी मुझे उनके बारे में मालूम है, उसके आधार पर मेरी यह धारणा है कि वे हमारी मातृभूमि की सच्ची हितचिन्तक हैं और यथाशक्ति उसकी उन्नति की चेष्टा कर रही हैं, इसलिए वे प्रत्येक सच्ची भारत—सन्तान की विशेष कृतज्ञता की अधिकारिणी हैं। प्रभु उन पर तथा उनसे सम्बन्धित सब पर आशीर्वाद की वर्षा करें। परन्तु यह एक बात है, और थियोसॉफिकल सोसायटी में सम्मिलित होना एक दूसरी बात। भक्ति, श्रद्धा और प्रेम एक बात है, और कोई मनुष्य जो कुछ कहे, उसे बिना विचारे, बिना तर्क किये, बिना उसका विश्लेषण किये निगल जाना सर्वथा दूसरी बात। एक अफवाह चारों ओर फैल रही है और वह यह कि अमेरिका और इंग्लैण्ड में जो कुछ काम मैंने किया है, उसमें थियोसॉफिस्टों ने मेरी सहायता की है। मैं तुम लोगों को स्पष्ट शब्दों में बता देना चाहता हूँ कि इसका प्रत्येक शब्द गलत है, प्रत्येक शब्द झूठ है। हम लोग इस जगत में उदार भावों एवं भिन्न मतवालों के प्रति सहानूभूमि के सम्बन्ध में बड़ी लम्बी—चौड़ी बातें सुना करते हैं। यह है तो बहुत अच्छी बात, पर कार्यतः हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सब बातों में विश्वास करता है, केवल तभी तक वह उससे सहानूभूति पाता है; पर ज्यों ही वह किसी विषय में उससे भिन्न विचार रखने का साहस करता है, त्यों ही वह

सहानुभूति गायब हो जाती है, वह प्रेम खत्म हो जाता है। फिर, कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनका अपना—अपना स्वार्थ रहता है। और यदि किसी देश में ऐसी कोई बात हो जाये, जिससे उनके स्वार्थ में कुछ धक्का लगता हो, तो उनके हृदय में इतनी ईर्ष्या और घृणा उत्पन्न हो जाती है कि वे उस समय क्या कर डालेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि हिन्दू अपने घरों को साफ करने की चेष्टा करते हों, तो इससे ईसाई मिशनरियों का क्या बिगड़ता है? यदि हिन्दू प्राणपण से अपना सुधार करने का प्रयत्न करते हों, तो इसमें ब्रह्मसमाज और अन्यान्य सुधार संस्थाओं का क्या जाता है? ये लोग हिन्दुओं के सुधार के विरोध में क्यों खड़े हों? ये लोग इस आन्दोलन के प्रबलतम शत्रु क्यों हों? क्यों?— यही मेरा प्रश्न है। मेरी समझ में तो उनकी घृणा और ईर्ष्या की मात्रा इतनी अधिक है कि इस विषय में उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करना भी सर्वथा निरर्थक है।

आज से चार वर्ष पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था— सात समुद्र पार, बिना किसी परिचय—पत्र के, बिना किसी जान—पहचान के, एक धनहीन, मित्रहीन, अज्ञात संन्यासी के रूप में— तब मैंने थियोसॉफिकल सोसायटी के नेता से भेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और हम भारत—भक्त हैं, तो सम्भवतः अमेरिका के किसी सज्जन के नाम मुझे एक परिचय—पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय—पत्र के लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने पूछा, “क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनेंगे?” मैंने उत्तर दिया, “नहीं, मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ? मैं तो आपके अधिकांश सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं करता।” उन्होंने कहा, “तब मुझे खेद है, मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता।” क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? जो हो, मैं अपने कतिपय मद्रासी मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक यहाँ पर उपस्थित हैं, केवल एक ही अनुपस्थित हैं, न्यायाधीश सुब्रह्मण्य अय्यर जिनके प्रति अपनी परम कृतज्ञता प्रकट करना शेष है। उनमें प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्दृष्टि विद्यमान है। इस

जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से वे एक हैं, वे भारत—माता के सच्चे सपूत हैं। अस्तु, धर्म—महासभा के कई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुंच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे, और वे शीघ्र ही समाप्त हो गये। इधर जाड़ा भी आ गया, और मेरे पास थे सिर्फ गर्मी के कपड़े। उस घोर शीतप्रधान देश में मैं आखिर क्या करूँ, यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्ग में भीख माँगने लगता, तो परिणाम यही होता कि मैं जेल भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डॉलर बचे थे। मैंने अपने मद्रासवासी मित्रों के पास तार भेजा। यह बात थियोसॉफिस्टों को मालूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा, ‘अब शैतान शीघ्र ही मर जायगा; ईश्वर की कृपा से अच्छा ही हुआ। बला टली!’ तो क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं ये बातें इस समय कहना नहीं चाहता था, किन्तु मेरे देशवासी यह सब जानने के इच्छुक थे, अतः कहनी पड़ी। गत तीन वर्षों तक इस सम्बन्ध में एक शब्द भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। चुपचाप रहना ही मेरा मूलमंत्र रहा, किन्तु आज ये बातें मुँह से निकल पड़ीं। पर बात यहीं पर पूरी नहीं हो जाती। मैंने धर्म—महासभा में कई थियोसॉफिस्टों को देखा। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने—जुलने की चेष्टा की। उन लोगों ने जिस अवज्ञा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा, वह आज भी मेरी नजरों पर नाच रही है — मानो वह कह रही थी, “यह कहाँ का क्षुद्र कीड़ा, यहाँ देवताओं के बीच आ गया?” मैं पूछता हूँ क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ, तो धर्म—महासभा में मेरा बहुत नाम तथा यश हो गया और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्य भार आ गया। पर प्रत्येक स्थान पर इन लोगों ने मुझे दबाने की चेष्टा की। थियोसॉफिकल सोसायटी के सदस्यों को मेरे व्याख्यान सुनने की मनाही कर दी गयी। यदि वे मेरी वक्तृता सुनने आते, तो वे सोसायटी की सहानुभूति खो देते; क्योंकि इस सोसायटी के गुप्त (एसोटेरिक) विभाग का यह नियम ही है कि जो मनुष्य उक्त विभाग का सदस्य होता है, उसे केवल कुथमी और मोरिया (वे जो भी हों) के पास से ही शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है — अवश्य इनके दृश्य प्रतिनिधि, मिस्टर जज और मिसेज बेसेन्ट से। अतः उक्त विभाग के सदस्य

होने का अर्थ यह है कि मनुष्य अपना स्वाधीन विचार बिल्कुल छोड़कर पूर्ण रूप से इन लोगों के हाथ में आत्मसमर्पण कर दे। निश्चित ही मैं ये सब बातें नहीं कर सकता था, और जो मनुष्य ऐसा करे, उसे मैं हिन्दू कह भी नहीं सकता। मेरे हृदय में स्वर्गीय मिस्टर जज के लिए बड़ी श्रद्धा है। वे गुणवान्, उदार, सरल और थियोसॉफिस्टों के योग्यतम प्रतिनिधि थे। उनमें और श्रीमती बेसेन्ट में जो विरोध हुआ था, उसके सम्बन्ध में कुछ भी राय देने का मुझे अधिकार नहीं है, क्योंकि दोनों ही अपने—अपने ‘महात्मा’ की सत्यता का दावा करते हैं। और यहाँ आश्चर्य की बात तो यह है कि दोनों एक ही ‘महात्मा’ का दावा करते हैं। ईश्वर जानें, सत्य क्या है — वे ही एकमात्र निर्णायक हैं। और जब दोनों पक्षों में प्रमाण की मात्रा बराबर है, तब ऐसी अवस्था में किसी भी पक्ष में अपनी राय प्रकट करने का किसी को अधिकार नहीं।

हाँ, तो इस प्रकार उन लोगों ने समस्त अमेरिका में मेरे लिए मार्ग प्रशस्त किया! पर वे यहीं पर नहीं रुके, वे दूसरे विरोधी पक्ष — ईसाई मिशनरियों — से जा मिले। इन ईसाई मिशनरियों ने मेरे विरुद्ध ऐसे—ऐसे भयानक झूठ गढ़े, जिनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। यद्यपि मैं उस परदेश में अकेला और मित्रहीन था, तथापि उन्होंने प्रत्येक स्थान में मेरे चरित्र पर दोषारोपण किया। उन्होंने मुझे भूखों मार—डालने की कोशिश की; और यह कहते मुझे दुःख होता है कि इस काम में मेरे एक भारतवासी भाई का भी हाथ था। वे भारत में एक सुधारक दल के नेता हैं। ये सज्जन प्रतिदिन घोषित करते हैं कि ‘ईसा भारत में आये हैं।’ तो क्या इसी प्रकार ईसा भारत में आयेंगे? क्या इसी प्रकार भारत का सुधार होगा? इन सज्जन को मैं अपने बचपन से ही जानता था, ये मेरे परम मित्र भी थे। जब मैं उनसे मिला, तो बड़ा ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैंने बहुत दिनों से अपने किसी देशभाई को नहीं देखा था। पर उन्होंने मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया। जिस दिन

धर्म—महासभा ने मुझे सम्मानित किया, जिस दिन शिकागो में मैं लोकप्रिय हो गया, उसी दिन से उनका स्वर बदल गया और छिपे—छिपे मुझे हानि पहुँचाने में उन्होंने कोई कसर उठा नहीं रखी। मैं पूछता हूँ क्या इसी तरह ईसा भारतवर्ष में आयेंगे? क्या बीस वर्ष ईसा की उपासना कर उन्होंने यही शिक्षा पाई है? हमारे ये बड़े—बड़े सुधारकगण कहते हैं कि ईसाई धर्म और ईसाई लोग भारतवासियों को उन्नत बनायेंगे। तो क्या वह इसी प्रकार होगा? यदि उक्त सज्जन को इसका एक उदाहरण लिया जाये, तो निस्सन्देह स्थिति कोई आशाजनक प्रतीत नहीं होती।

एक बात और। मैंने समाज—सुधारकों के मुख्यपत्र में पढ़ा था कि मैं शूद्र हूँ और मुझसे पूछा गया था कि एक शूद्र को संन्यासी होने का क्या अधिकार है? तो इस पर मेरा उत्तर यह है कि मैं उन महापुरुष का वंशधर हूँ जिनके चरणकमलों पर प्रत्येक ब्राह्मण ‘यमाय धर्मराजाय चित्रगुप्ताय वै नमः’, उच्चारण करते हुए पुष्पांजलि प्रदान करता है और जिनके वंशज विशुद्ध क्षत्रिय हैं। यदि अपने पुराणों पर विश्वास हो, तो इन समाज—सुधारकों को जान लेना चाहिए कि मेरी जाति ने पुराने जमाने में अन्य सेवाओं के अतिरिक्त, कई शताब्दियों तक आधे भारतवर्ष का शासन किया था। यदि मेरी जाति की गणना छोड़ दी जाये, तो भारत की वर्तमान सभ्यता का क्या शेष रहेगा? अकेले बंगाल में ही, मेरी जाति में सबसे बड़े दार्शनिक, सबसे बड़े कवि, सबसे बड़े इतिहासज्ञ, सबसे बड़े पुरातत्ववेत्ता और सबसे बड़े धर्मप्रचारक उत्पन्न हुए हैं। मेरी ही जाति ने वर्तमान समय के सबसे बड़े वैज्ञानिकों से भारतवर्ष को विभूषित किया है। इन निन्दकों को थोड़ा अपने देश के इतिहास का तो ज्ञान प्राप्त करना था; ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णों के सम्बन्ध में जरा अध्ययन तो करना था; जरा यह तो जानना था कि तीनों ही वर्णों को संन्यासी होने और वेद के अध्ययन करने का समान अधिकार है। ये बातें मैंने यों ही प्रसंगवश कह दीं। वे जो मुझे शूद्र कहते हैं, इसकी मुझे तनिक भी पीड़ा नहीं। मेरे पूर्वजों ने गरीबों पर जो अत्याचार किया था, इससे उसका कुछ परिशोध हो जायगा। यदि मैं

पैरिया (नीच चाण्डाल) होता, तो मुझे और भी आनन्द आता, क्योंकि मैं उन महापुरुष का शिष्य हूँ जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी एक पैरिया (चाण्डाल) के घर को साफ करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी। अवश्य वह इस पर सहमत हुआ नहीं — और भला होता भी कैसे? एक तो ब्राह्मण, फिर उस पर संन्यासी, वे आकर घर साफ करेंगे, इस पर क्या वह कभी राजी हो सकता था? निदान, एक दिन आधी रात को उठकर गुप्त रूप से उन्होंने उस पैरिया के घर में प्रवेश किया और उसका पाखाना साफ कर दिया, उन्होंने अपने लम्बे—लम्बे बालों से उस स्थान को पौँछ डाला। और यह काम वे लगातार कई दिनों तक करते रहे, ताकि वे अपने को सबका दास बना सकें। मैं उन्हीं महापुरुष के श्री चरणों को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं — मैं उन्हीं आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सभ्यता मेरे मन में उस मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश में अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यों? — केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार में वह मित्र उसके धनोपार्जन में बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप हैं ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध में मैंने अभी कहा है। इससे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारकों में से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणों के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नहीं। लम्बी—चौड़ी बातों की अपेक्षा थोड़ा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज—सुधारक समितियों के बारे में कुछ कहूँगा। उन्होंने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बंगाल के

समाज—सुधारकों में बड़ा अन्तर है। मैं उनसे इस बात में सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगों से कहा है, और यह तुम लोगों में से बहुतों को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था में है। बंगाल में जैसी क्रिया—प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास में नहीं है। यहाँ पर धीरे—धीरे स्थायी रूप से सब विषयों में उन्नति हो रही है; यहाँ पर समाज का क्रमशः विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं। बंगाल में कहीं—कहीं कुछ—कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास में यह पुनरुत्थान नहीं है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनों प्रदेशों के निवासियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में समाज—सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नहीं समझते। इन संस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से धमकाया नहीं जा सकता। जो मनुष्य बिना कपड़ों के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस डिग्री कम हो, वह भारत में इतनी सरलता से नहीं डराया जा सकता। यही पहली बात है, जो मैं उनसे कहूँगा — मुझमें अपनी थोड़ी दृढ़ता है, मेरा थोड़ा निज का अनुभव भी है और मेरे पास संसार के लिए एक सन्देश है, जो मैं बिना किसी डर के, बिना भविष्य की चिन्ता किये सबको दृঁगा। सुधारकों से मैं कहूँगा कि मैं स्वयं उनसे कहीं बढ़कर सुधारक हूँ। वे लोग केवल इधर—उधर थोड़ा सुधार करना चाहते हैं। और मैं चाहता हूँ आमूल सुधार। हम लोगों का मतभेद है केवल सुधार की प्रणाली में। उनकी प्रणाली विनाशात्मक है, और मेरी संघटनात्मक। मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति में। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश मढ़ने का साहस नहीं कर सकता

कि 'तुम्हें इसी भाँति चलना होगा, दूसरी तरह नहीं।' मैं तो सिर्फ उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ, जो राम के सेतु बाँधने के समय अपने योगदान स्वरूप थोड़ा बालू लाकर सन्तुष्ट हो गयी थी। यही मेरा भाव है। यह अद्भुत राष्ट्र—जीवनरूपी यंत्र युग—युग से कार्य करता आ रहा है, राष्ट्रीय जीवन का यह अद्भुत प्रवाह हम लोगों के सम्मुख बह रहा है। कौन जानता है, कौन साहसपूर्वक कह सकता है कि यह अच्छा है या बुरा, और यह किस प्रकार चलेगा? हजारों घटनाचक्र उसके चारों ओर उपस्थित होकर उसे एक विशिष्ट प्रकार की स्फूर्ति देकर कभी उसकी गति को मन्द और कभी उसे तीव्र कर देते हैं। उनके वेग को नियमित करने का कौन साहस कर सकता है? हमारा काम तो फल की ओर दृष्टि न रख केवल काम करते जाना है, जैसा कि गीता में कहा है। राष्ट्रीय जीवन को जिस ईंधन की जरूरत है, देते जाओ, बस वह अपने ढंग से उन्नति करता जायेगा; कोई उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट नहीं कर सकता। हमारे समाज में बहुत—सी बुराइयाँ हैं, पर इस तरह बुराइयाँ तो दूसरे समाजों में भी हैं। यहाँ की भूमि विधवाओं के आँसू से कभी—कभी तर होती है, तो पाश्चात्य देश का वायुमण्डल अविवाहित स्त्रियों की आहों से भरा रहता है। यहाँ का जीवन गरीबी की चपेटों से जर्जरित है, तो वहाँ पर लोग विलासिता के विष से जीवन्मृत हो रहे हैं। यहाँ पर लोग इसलिए आत्महत्या करना चाहते हैं कि उनके पास खाने को कुछ नहीं है, तो वहाँ खाद्यान्न (भोग) की प्रचुरता के कारण लोग आत्महत्या करते हैं। बुराइयाँ सभी जगह हैं, यह तो पुराने वात—रोग की तरह है। यदि उसे पैर से हटाओ, तो वह सिर में चला जाता है। वहाँ से हटाने पर वह दूसरी जगह भाग जाता है। बस उसे केवल एक जगह से दूसरी जगह ही भगा सकते हैं। ऐ बच्चों, बुराइयों के निराकरण की चेष्टा करना ही सही उपाय नहीं है। हमारे दर्शन शास्त्रों में लिखा है कि अच्छे और बुरे का नित्य सम्बन्ध है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि तुम्हारे पास एक है, तो दूसरा अवश्य रहेगा। जब समुद्र में एक स्थान पर लहर उठती है तो दूसरे स्थान पर गड़दा होना अनिवार्य है। इतना ही नहीं,

सारा जीवन ही दोषयुक्त है। बिना किसी की हत्या किये एक साँस तक नहीं ली जा सकती, बिना किसी का भोजन छीने हम एक कौर भी नहीं खा सकते। यही प्रकृति का नियम है, यही दार्शनिक सिद्धान्त है।

इसलिए हमें केवल यह समझ लेना होगा कि सामाजिक दोषों के निराकरण का कार्य उतना वस्तुनिष्ठ नहीं है, जितना आत्मनिष्ठ। हम कितनी भी लम्बी—चौड़ी डिंग क्यों न हाँकें समाज के दोषों को दूर करने का कार्य जितना स्वयं के लिए शिक्षात्मक है, उतना समाज के लिए वास्तविक नहीं। समाज के दोष दूर करने के सम्बन्ध में सबसे पहले इस तत्व को समझ लेना होगा, और इसे समझकर अपने मन को शान्त करना होगा, अपने खून की चढ़ती गरमी को रोकना होगा, अपनी उत्तेजना को दूर करना होगा। संसार का इतिहास भी हमें यह बताता है कि जहाँ कहीं इस प्रकार की उत्तेजना से समाज के सुधार करने का प्रयत्न हुआ है, वहाँ केवल यही फल हुआ कि जिस उद्देश्य से वह किया गया था, उस उद्देश्य को ही उसने विफल कर दिया। दासत्व को नष्ट कर देने के लिए अमेरिका में जो लड़ाई थी, उसकी अपेक्षा, अधिकार और स्वतंत्रता की स्थापना के लिए किसी बड़े सामाजिक आन्दोलन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। तुम सभी लोग उसे जानते हो। पर उसका फल क्या हुआ? यही कि आजकल के दास इस युद्ध के पूर्व के दासों की अपेक्षा सौ गुनी अधिक बुरी दशा को पहुँच गये। इस युद्ध के पूर्व ये बेचारे नीग्रो कम से कम किसी की सम्पत्ति तो थे, और सम्पत्ति होने के नाते इनकी देखभाल की जाती थी कि ये कहीं दुर्बल और बेकाम न हो जायें। पर आज तो ये किसी की सम्पत्ति नहीं हैं, इनके जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं है। मामूली बातों के लिए ये जीते जी जला दिये जाते हैं, गोली से उड़ा दिये जाते हैं, और इनके हत्यारों पर कोई कानून ही लागू नहीं होता। क्यों? इसीलिए कि ये 'निगर' हैं, मानो ये मनुष्य तो क्या पशु भी नहीं हैं! समाज के दोषों को प्रबल उत्तेजनापूर्ण आन्दोलन द्वारा अथवा कानून के बल पर सहसा हटा देने का यही परिणाम होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है — इस प्रकार का आन्दोलन चाहे किसी भले

उद्देश्य से ही क्यों न किया गया हो। यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। प्रत्यक्ष अनुभव से ही मैंने यह सीखा है। यही कारण है कि मैं केवल दोष ही देखने वाली इन संस्थाओं का सदस्य नहीं हो सकता। दोषारोपण अथवा निन्दा करने की भला आवश्यकता क्या? ऐसा कौन—सा समाज है, जिसमें दोष न हों? सभी समाज में तो दोष हैं। यह तो सभी कोई जानते हैं। आज का एक बच्चा भी इसे जानता है; वह भी सभामंच पर खड़ा होकर हमारे सामने हिन्दू धर्म की भयानक बुराइयों पर एक लम्बा भाषण दे सकता है। जो भी अशिक्षित विदेशी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता हुआ भारत में पहुंचता है, वह रेल पर से भारत को उड़ती नजर से देख भर लेता है, और बस फिर भारत की भयानक बुराइयों पर बड़ा सारगर्भित व्याख्यान देने लगता है! हम जानते हैं कि यहाँ बुराइयाँ हैं। पर बुराई तो हर कोई दिखा सकता है। मानव समाज का सच्चा हितैषी तो वह है, जो इन कठिनाइयों से बाहर निकलने का उपाय बताये। यह तो इस प्रकार है कि कोई एक दार्शनिक एक झूबते हुए लड़के को गम्भीर भाव से उपदेश दे रहा था, तो लड़के ने कहा, “पहले मुझे पानी से बाहर निकालिये, फिर उपदेश दीजिये।” बस ठीक इसी तरह भारतवासी भी कहते हैं, “हम लोगों ने बहुत व्याख्यान सुन लिये, बहुत—सी संस्थाएँ देख लीं, बहुत से पत्र पढ़ लिये, अब तो ऐसा मनुष्य चाहिए, जो अपने हाथ का सहारा दे, हमें इन दुःखों के बाहर निकाल दे। कहाँ है वह मनुष्य जो हमसे वास्तविक प्रेम करता है, जो हमारे प्रति सच्ची सहानुभूति रखता है?” बस उसी आदमी की हमें जरूरत है। यहीं पर मेरा इन समाज सुधारक आन्दोलनों से सर्वथा मतभेद है। आज सौ वर्ष हो गये ये आन्दोलन चल रहे हैं, पर सिवाय निन्दा और विद्वेषपूर्ण साहित्य की रचना के इनसे और क्या लाभ हुआ है? ईश्वर करता, यहाँ ऐसा न होता। इन्होंने पुराने समाज की कठोर आलोचना की है, उस पर तीव्र दोषारोपण किया है, उसकी कटु निन्दा की है, और अन्त में पुराने समाज ने भी इनके समान स्वर उठाकर ईंट का जवाब ईंट से दिया है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक भारतीय भाषा में ऐसे साहित्य की रचना हो गयी है, जो जाति के लिए, देश के लिए कलंकस्वरूप

है। क्या यही सुधार है? क्या उसी तरह देश गौरव के पथ पर बढ़ेगा? यह दोष है किसका?

इसके बाद एक और महत्वपूर्ण विषय पर हमें विचार करना है। भारतवर्ष में हमारा शासन सदैव राजाओं द्वारा हुआ है, राजाओं ने ही हमारे सब कानून बनाये हैं। अब वे राजा नहीं हैं, और इस विषय में अग्रसर होने के लिए हमें मार्ग दिखलाने वाला अब कोई नहीं रहा। सरकार साहस नहीं करती। वह तो जनमत की गति देखकर ही अपनी कार्य—प्रणाली निश्चित करती है। अपनी समस्याओं को हल कर लेने वाला एक कल्याणकारी और प्रबल लोकमत स्थापित करने में समय लगता है — काफी लम्बा समय लगता है, और इस बीच हमें प्रतीक्षा करनी होगी। अतएव सामाजिक सुधार की सम्पूर्ण समस्या यह रूप लेती है: कहाँ हैं वे लोग, जो सुधार चाहते हैं? पहले उन्हें तैयार करो। सुधार चाहने वाले लोग हैं कहाँ कुछ थोड़े से लोग किसी बात को उचित समझते हैं और अब उसे अन्य सब पर जबरदस्ती लादना चाहते हैं। इन अल्पसंख्य व्यक्तियों के अत्याचार के समान दुनिया में और कोई अत्याचार नहीं। मुट्ठी भर लोग, जो सोचते हैं कि कतिपय बातें दोषपूर्ण हैं, राष्ट्र को गतिशील नहीं कर सकते। राष्ट्र में आज प्रगति क्यों नहीं है? क्यों वह जड़भावापन है? पहले राष्ट्र को शिक्षित करो, अपनी निजी विधायक संस्थाएँ बनाओ, फिर तो कानून आप ही आ जायँगे। जिस शक्ति के बल से, जिसके अनुमोदन से कानून का गठन होगा, पहले उसकी सृष्टि करो। आज राजा नहीं रहे; जिस नयी शक्ति से, जिस नये दल की सम्मति से नयी व्यवस्था गठित होगी, वह लोक—शक्ति कहाँ है? पहले उसी लोक—शक्ति को संगठित करो। अतएव समाज—सुधार के लिए भी प्रथम कर्तव्य है — लोगों को शिक्षित करना। और जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं होता, तब तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।

गत शताब्दी में सुधार के लिए जो भी आन्दोलन हुए हैं, उनमें से अधिकांश केवल ऊपरी दिखावा मात्र रहे हैं। उनमें से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्णों से ही सम्बन्ध रखा है, शेष दो से नहीं। विधवा—विवाह के प्रश्न से

70 प्रतिशत भारतीय स्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। और देखो, मेरी बात पर ध्यान दो, इस प्रकार के सब आन्दोलनों का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्णों से ही रहा है, जो जनसाधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए हैं। इन लोगों ने अपने—अपने घर को साफ करने एवं अंग्रेजों के सम्मुख अपने को सुन्दर दिखाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। पर यह तो सुधार नहीं कहा जा सकता। सुधार करने में हमें चीज के भीतर, उसकी जड़ तक पहुँचना होता है। इसी को मैं आमूल सुधार कहता हूँ। आग जड़ में लगाओ और उसे क्रमशः ऊपर उठने दो एवं एक अखंड भारतीय राष्ट्र संगठित करो।

पर यह एक बड़ी भारी समस्या है, और इसका समाधान भी कोई सरल नहीं है। अतएव शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं। यह समस्या तो गत कई शताब्दियों से हमारे देश के महापुरुषों को ज्ञात थी।

आजकल, विशेषतः दक्षिण में, बौद्ध धर्म और उसके अज्ञेयवाद की आलोचना करने की एक प्रथा—सी चल पड़ी है। यह उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता कि जो विशेष दोष आजकल हमारे समाज में वर्तमान हैं, वे सब बौद्ध धर्म द्वारा ही छोड़ गये हैं। बौद्ध धर्म ने हमारे लिए यही वसीयत छोड़ी है। जिन लोगों ने बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति का इतिहास कभी नहीं पढ़ा, उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तकों में हम पढ़ते हैं कि बौद्ध धर्म के इतने विस्तार का कारण था — गौतम बुद्ध द्वारा प्रचारित अपूर्व आचार—शास्त्र और उनका लोकोत्तर चरित्र। भगवान बुद्धदेव के प्रति मेरी यथेष्ट श्रद्धा—भक्ति है। पर मेरे शब्दों पर ध्यान दो, बौद्ध धर्म का विस्तार उक्त महापुरुष के मत और अपूर्व चरित्र के कारण उतना नहीं हुआ, जितना बौद्धों द्वारा निर्मित किये गये बड़े—बड़े मन्दिरों एवं भव्य प्रतिमाओं के कारण, समग्र देश के सम्मुख किये गये भड़कीले उत्सवों के कारण। इसी भाँति बौद्ध धर्म ने उन्नति की। इन सब बड़े—बड़े मन्दिरों एवं आडम्बर भरे क्रियाकलापों के सामने घरों में हवन के लिए प्रतिष्ठित छोटे—छोटे अग्निकुण्ड ठहर न सके। पर अन्त में इन सब क्रिया—कलापों में भारी

अवनति हो गयी – ऐसी अवनति कि उसका वर्णन भी श्रोताओं के सामने नहीं किया जा सकता। जो इस सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हों, वे इसे किंचित परिमाण में दक्षिण भारत के नाना प्रकार के कलाशिल्प से युक्त बड़े-बड़े मन्दिरों में देख लें, और बौद्धों से उत्तराधिकार के रूप में हमने केवल यही पाया।

इसके बाद महान सुधारक श्री शंकराचार्य और उनके अनुयायियों का अभ्युदय हुआ। उस समय से आज तक इन कई सौ वर्षों में भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता को धीरे-धीरे उस मौलिक विशुद्ध वेदान्त के धर्म की ओर लाने की चेष्टा की गयी है। उन सुधारकों को बुराइयों का पूरा ज्ञान था, पर उन्होंने समाज की निन्दा नहीं की। उन्होंने यह नहीं कहा कि ‘जो कुछ तुम्हारे पास है, वह सभी गलत है, उसे तुम फेंक दो।’ ऐसा कभी नहीं हो सकता था। आज मैंने पढ़ा, मेरे मित्र डाक्टर बैरोज कहते हैं कि ईसाई धर्म के प्रभाव ने 300 वर्षों में यूनानी और रोमन धर्म के प्रभाव को उलट दिया। पर जिसने कभी यूरोप, यूनान और रोम को देखा है, वह ऐसा कभी नहीं कह सकता। रोमन और यूनानी धर्मों का प्रभाव प्रोटेस्टेन्ट देशों तक में सर्वत्र व्याप्त है। प्राचीन देवता नये वेश में वर्तमान हैं – केवल नाम भर बदल दिये गये हैं। देवियाँ तो हो गयी हैं ‘मेरी’, देवता हो गये हैं ‘सन्त’ और अनुष्ठानों ने नया—नया रूप धारण कर लिया है। यहाँ तक कि प्राचीन उपाधि पांटिफेक्स मैकिसमस पूर्ववत् ही विद्यमान हैं। अतएव, अचानक परिवर्तन नहीं हो सकते। शंकराचार्य और रामानुज इसे जानते थे। इसलिए उस समय प्रचलित धर्म को धीरे-धीरे उच्चतम आदर्श तक पहुँचा देना ही उनके लिए एक उपाय शेष था। यदि वे दूसरी प्रणाली का सहारा लेते, तो वे पाखंडी सिद्ध होते, क्योंकि उनके धर्म का प्रधान मत ही है क्रम-विकासवाद। उनके धर्म का मूलतत्व यही है कि इन सब नाना प्रकार की अवस्थाओं में से होकर आत्मा उच्चतम लक्ष्य पर पहुँचती है। अतः ये सभी अवस्थाएं आवश्यक और हमारी सहायक हैं। भला कौन इनकी निन्दा करने का साहस कर सकती है?

आजकल मूर्ति—पूजा को गलत बताने की प्रथा—सी चल पड़ी है, और

सब लोग बिना किसी आपत्ति के उसमें विश्वास भी करने लग गये हैं। मैंने भी एक समय ऐसा ही सोचा था और उसके दंडस्वरूप मुझे ऐसे व्यक्ति के चरण कमलों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी, जिन्होंने सब कुछ मूर्ति—पूजा के ही द्वारा प्राप्त किया था। मेरा अभिप्राय श्री रामकृष्ण परमहंस से है। यदि मूर्ति—पूजा के द्वारा श्री रामकृष्ण जैसे व्यक्ति उत्पन्न हो सकते हैं, तब तुम क्या पसन्द करोगे—सुधारकों का धर्म, या मूर्ति—पूजा? मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। यदि मूर्ति—पूजा के द्वारा इस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंस उत्पन्न हो सकते हों, तो और हजारों मूर्तियों की पूजा करो। प्रभु तुम्हें सिद्धि दे! जिस किसी भी उपाय से हो सके, इस प्रकार के महापुरुषों की सृष्टि करो। और इतने पर भी मूर्ति—पूजा की निन्दा की जाती है! क्यों? यह कोई नहीं जानता। शायद इसलिए कि हजारों वर्ष पहले किसी यहूदी ने इसकी निन्दा की थी। अर्थात् उसने अपनी मूर्ति को छोड़कर और सबकी मूर्तियों की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा था, यदि ईश्वर का भाव किसी विशेष प्रतीक या सुन्दर प्रतिमा द्वारा प्रकट किया जाये, तो यह भयानक दोष है, एक जघन्य पाप है; परन्तु यदि उसका अंकन एक सन्दूक के रूप में किया जाये, जिसके दोनों किनारों पर दो देवदूत बैठे हैं और ऊपर बादल का एक टुकड़ा लटक रहा है, तो वह बहुत ही पवित्र, पवित्रतम होगा। यदि ईश्वर पेंडुकी का रूप धारण करके आये, तो वह महापवित्र होगा; पर यदि वह गाय का रूप लेकर आये, तो यह मूर्ति—पूजकों का कुसंस्कार होगा! — उसकी निन्दा करो। दुनिया का बस यही भाव है। इसीलिए कवि ने कहा है, हम मर्य जीव कितने निर्बोध हैं! परस्पर एक दूसरे के दृष्टिकोण से देखना और विचार करना कितना कठिन है! और यही मनुष्य समाज की उन्नति में घोर विघ्नस्वरूप है। यही है ईर्ष्या, धृणा और लड़ाई—झगड़े की जड़। अरे बालकों, अपरिपक्व बुद्धिवाले नासमझ लड़को, तुम लोग कभी मद्रास के बाहर तो गये नहीं, और खड़े होकर सहस्रों प्राचीन संस्कारों से नियन्त्रित तीस करोड़ मनुष्यों पर कानून चलाना चाहते हो! क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती? दूर हो जाओ धर्मनिन्दा के इस कुर्कम से, और पहले खुद अपना

सबक सीखो । श्रद्धाहीन बालकों, तुम कागज पर कुछ पंक्तियाँ धसीट सकने में और किसी मूर्ख को पकड़कर उन्हें छपवा लेने में अपने को समर्थ समझकर सोचते हो कि तुम जगत् के शिक्षक हो, तुम्हारा मत ही भारत का जनमत है! तो क्या ऐसी बात है? इसीलिए मैं मद्रास के समाज—सुधारकों से कहना चाहता हूँ कि मुझमें उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और प्रेम है। उनके विशाल हृदय, उनकी स्वदेश—प्रीति, पीड़ित और निर्धन के प्रति उनके प्रेम के कारण ही मैं उनसे प्यार करता हूँ। किन्तु भाई जैसे भाई से स्नेह करता है और साथ ही उसके दोष भी दिखा देता है, ठीक इसी तरह मैं उनसे कहता हूँ कि उनकी कार्यप्रणाली ठीक नहीं है। यह प्रणाली भारत में सौ वर्ष तक आजमायी गयी, पर वह कामयाब न हो सकी। अब हमें किसी नयी प्रणाली का सहारा लेना होगा ।

क्या भारतवर्ष में कभी सुधारकों का अभाव था? क्या तुमने भारत का इतिहास पढ़ा है? रामानुज, शंकर, नानक, चैतन्य, कबीर और दादू कौन थे? ये सब बड़े—बड़े धर्माचार्य, जो भारत—गगन में अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह एक के बाद एक उदय हुए और फिर अस्त हो गये, कौन थे? क्या रामानुज के हृदय में नीच जातियों के लिए प्रेम नहीं था? क्या उन्होंने अपने सारे जीवन भर पैरिया (चाण्डाल) तक को अपने सम्प्रदाय में ले लेने का प्रयत्न नहीं किया? क्या उन्होंने अपने सम्प्रदाय में मुसलमान तक को मिला लेने की चेष्टा नहीं की? क्या नानक ने मुसलमान और हिन्दू दोनों को समान भाव से शिक्षा देकर समाज में एक नयी अवस्था लाने का प्रयत्न नहीं किया? इन सबने प्रयत्न किया, और उनका काम आज भी जारी है। भेद केवल इतना है कि वे आज के समाज—सुधारकों की तरह दम्भी नहीं थे; वे इनके समान अपने मुँह से कभी अभिशाप नहीं उगलते थे। उनके मुँह से केवल आशीर्वाद ही निकलता था। उन्होंने कभी भर्त्सना नहीं की। उन्होंने लोगों से कहा कि जाति को सतत उन्नतिशील होना चाहिए। उन्होंने अतीत में दृष्टि डालकर कहा, ‘‘हिन्दुओं, तुमने अभी तक जो किया अच्छा ही किया, पर भाइयों, तुम्हें अब इससे भी अच्छा करना होगा।’’ उन्होंने यह नहीं कहा,

“पहले तुम दुष्ट थे, और अब तुम्हें अच्छा करना होगा।” उन्होंने यही कहा, “पहले तुम अच्छे थे, अब और भी अच्छे बनो।” इससे जमीन—आसमान का फर्क पैदा हो जाता है। हम लोगों को अपनी प्रकृति के अनुसार उन्नति करनी होगी। विदेशी संस्थाओं ने बलपूर्वक जिस कृत्रिम प्रणाली को हममें प्रचलित करने की चेष्टा की है, उसके अनुसार काम करना वृथा है। वह असम्भव है। जय हो प्रभु! हम लोगों को तोड़—मरोड़कर नये सिरे से दूसरे राष्ट्रों के ढाँचे में गढ़ना असम्भव है! मैं दूसरी कौमों की सामाजिक प्रथाओं की निन्दा नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं, पर हमारे लिए नहीं। उनके लिए जो कुछ अमृत है, हमारे लिए वही विष हो सकता है। पहले यही बात सीखनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान, अन्य प्रकार के परम्परागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचारों से उनकी वर्तमान सामाजिक प्रथा गठित हुई है। और हम लोगों के पीछे हैं हमारे अपने परम्परागत संस्कार और हजारों वर्षों के कर्म। अतएव हमें स्वभावतः अपने संस्कारों के अनुसार ही चलना पड़ेगा; और यह हमें करना ही होगा।

तब फिर मेरी योजना क्या है? मेरी योजना है — प्राचीन महान आचार्यों के उपदेशों का अनुसरण करना। मैंने उनके कार्य का अध्ययन किया है, और जिस प्रणाली से उन्होंने कार्य किया, उनके आविष्कार करने का मुझे सौभाग्य मिला। वे सब महान् समाज—संस्थापक थे। बल, पवित्रता और जीवन—शक्ति के वे अद्भुत आधार थे। उन्होंने सबसे अद्भुत कार्य किया — समाज में बल, पवित्रता और जीवन—शक्ति संचारित की। हमें भी सबसे अद्भुत कार्य करना है। आज अवस्था कुछ बदल गयी है, इसलिए कार्यप्रणाली में कुछ थोड़ा—सा परिवर्तन करना होगा; बस इतना ही इससे अधिक कुछ नहीं। मैं देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वही उसके जीवन का केन्द्र है, उसके जीवन का प्रधान स्वर है, जिसके साथ अन्य सब स्वर मिलकर समरसता उत्पन्न करते हैं। किसी देश में, जैसे इंग्लैण्ड में, राजनीतिक सत्ता ही उसकी जीवन—शक्ति है। कला कौशल की उन्नति करना किसी दूसरे राष्ट्र

का प्रधान लक्ष्य है। ऐसे ही और दूसरे देशों को भी समझो। किन्तु भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वही राष्ट्रीय जीवनरूपी संगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाविक जीवन—शक्ति को दूर फेंक देने की चेष्टा करे — शताब्दियों से जिस दिशा की ओर उसकी विशेष गति हुई है, उससे मुड़ जाने का प्रयत्न करे — और यदि वह अपने इस कार्य में सफल हो जाये, तो वह राष्ट्र मृत हो जाता है। अतएव यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति, समाज—नीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवन—शक्ति का केन्द्र बनाने में सफल हो जाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जायगा। यदि तुम इसे बचाना चाहो, तो अपने जीवन—शक्ति रूपी धर्म के भीतर से ही तुम्हें अपने सारे कार्य करने होंगे — अपनी प्रत्येक क्रिया का केन्द्र इस धर्म को ही बनाना होगा। तुम्हारे स्नायुओं का प्रत्येक स्पन्दन तुम्हारे इस धर्मरूपी मेरुदंड के भीतर से होकर गुजरे।

मैंने देखा कि 'सामाजिक जीवन पर धर्म का कैसा प्रभाव पड़ेगा', यह बिना दिखाये मैं अमेरिकावासियों में धर्म का प्रचार नहीं कर सकता था। इंग्लैण्ड में भी, बिना यह बताये कि 'वेदान्त के द्वारा कौन—कौन से आश्चर्यजनक राजनीतिक परिवर्तन हो सकेंगे,' मैं धर्म—प्रचार नहीं कर सका। इसी भाँति भारत में सामाजिक सुधार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह दिखा दिया जाये कि उस नयी प्रथा से आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में कौन—सी विशेष सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमें दिखाना होगा कि उसके द्वारा हमारे राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षा — आध्यात्मिक उन्नति — की कितनी अधिक पूर्ति हो सकेगी। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति को अपना—अपना मार्ग चुन लेना पड़ता है, उसी भाँति प्रत्येक राष्ट्र को भी। हमने युगों पूर्व अपना पथ निर्धारित कर लिया था, और अब हमें उसी से लगे रहना चाहिए — उसी के अनुसार चलना चाहिए। फिर, हमारा यह चयन भी तो उतना कोई बुरा नहीं। जड़ के बदले चैतन्य का, मनुष्य के बदले ईश्वर का चिन्तन करना क्या संसार में इतनी बुरी चीज़

है? परलोक में दृढ़ आस्था, इस लोक के प्रति तीव्र विरक्ति, प्रबल त्याग—शक्ति एवं ईश्वर और अविनाशी आत्मा में दृढ़ विश्वास तुम लोगों में सतत् विद्यमान है। क्या तुम इसे छोड़ सकते हो? नहीं, तुम इसे कभी नहीं छोड़ सकते। तुम कुछ दिन भौतिकवादी होकर और भौतिकवाद की चर्चा करके भले ही मुझमें विश्वास जमाने की चेष्टा करो, पर मैं जानता हूँ कि तुम क्या हो। तुमको थोड़ा धर्म अच्छी तरह समझा देने भर की देर है कि तुम परम आस्तिक हो जाओगे। सोचो, अपना स्वभाव भला कैसे बदल सकते हो?

अतः भारत में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म—प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्लांटित करने के पहले आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाये। सर्वप्रथम, हमारे उपनिषदों, पुराणों और अन्य सब शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं, उन्हें इन सब ग्रन्थों के पन्नों से बाहर निकालकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, वनों की शून्यता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय—विशेषों के हाथों से छीनकर देश में सर्वत्र बिखेर देना होगा, ताकि ये सत्य दावानल के समान सारे देश को चारों ओर से लपेट लें—उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जायँ—हिमालय से कन्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र वे धधक उठें। सबसे पहले हमें यही करना होगा। सभी को इन सब शास्त्रों में निहित उपदेश सुनाने होंगे, क्योंकि उपनिषद में कहा है, “पहले इसे सुनना होगा, फिर मनन करना होगा और उसके बाद निदिध्यासन।” पहले लोग इन सत्यों को सुनें। और जो भी व्यक्ति अपने शास्त्र के इन महान सत्यों को दूसरों को सुनाने में सहायता पहुँचायेगा, वह आज एक ऐसा कर्म करेगा, जिसके समान कोई दूसरा कर्म ही नहीं। महर्षि व्यास ने कहा है, “इस कलियुग में मनुष्यों के लिए एक ही कर्म शेष रह गया है। आजकल यज्ञ और कठोर तपस्याओं से कोई फल नहीं होता। इस समय दान ही एकमात्र कर्म है।” और दानों में धर्मदान, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान का दान ही सर्वश्रेष्ठ है। दूसरा दान है

विद्यादान, तीसरा प्राणदान और चौथा अन्नदान। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की ओर देखो! इस निर्धन, अत्यन्त निर्धन देश में लोग कितना दान करते हैं, इसकी ओर जरा नजर डालो। यहाँ के लोग इतने अतिथिसेवी हैं कि एक व्यक्ति बिना एक कौड़ी अपने पास रखे उत्तर से दक्षिण तक यात्रा करके आ सकता है। और हर स्थान में उसका ऐसा सत्कार होगा, मानो वह परम मित्र हो। यदि यहाँ कहीं पर रोटी का एक टुकड़ा भी है, तो कोई भिक्षुक भूख से नहीं मर सकता।

इस दानशील देश में हमें पहले प्रकार के दान के लिए अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिए साहसपूर्वक अग्रसर होना होगा। और यह ज्ञान—विस्तार भारतवर्ष की सीमा में ही आबद्ध नहीं रहेगा, इसका विस्तार तो सारे संसार भर में करना होगा। और अभी तक यही होता भी रहा है। जो लोग कहते हैं कि भारत के विचार कभी भारत से बाहर नहीं गये, जो सोचते हैं कि मैं ही पहला संचासी हूँ जो भारत के बाहर धर्म प्रचार करने गये, वे अपनी जाति के इतिहास को नहीं जानते। यह कई बार घटित हो चुका है। जब कभी भी संसार को इसकी आवश्यकता हुई, उसी समय इस निरन्तर बहने वाले आध्यात्मिक ज्ञान—स्रोत ने संसार को प्लावित कर दिया। राजनीति सम्बन्धी विद्या का विस्तार रणभेरियों और सुसज्जित सेनाओं के बल पर किया जा सकता है। लौकिक एवं समाज सम्बन्धी विद्या का विस्तार तो शान्ति द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार चक्षु और कर्णगोचर न होता हुआ भी मृदु ओस—बिन्दु गुलाब की कलियों को विकसित कर देता है, बस वैसा ही आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध में भी समझो। यही एक दान है, जो भारत दुनिया को बार—बार देता आया है। जब कभी भी कोई दिग्विजयी जाति उठी, जिसने संसार के विभिन्न देशों को एक साथ ला दिया और आपस में यातायात तथा संचार की सुविधा कर दी, त्यों ही भारत उठा और उसने संसार की समग्र उन्नति में अपने आध्यात्मिक ज्ञान का भाग भी प्रदान कर दिया। बुद्धदेव के जन्म के बहुत पहले से ही ऐसा होता आया है, और इसके चिह्न आज भी चीन, एशिया माइनर और मलय द्वीप समूह में मौजूद

हैं। जब उस महाबलशाली दिग्विजयी यूनानी ने उस समय के ज्ञात संसार के सब भागों को एक साथ ला दिया था, तब भी यही बात घटी थी – भारत के आध्यात्मिक ज्ञान की बाढ़ ने बाहर उमड़कर संसार को प्लावित कर दिया। आज पाश्चात्य देशवासी जिस सभ्यता का गर्व करते हैं, वह उसी प्लावन का अवरोध मात्र है। आज फिर से वही सुयोग उपस्थित हुआ है। इंग्लैण्ड की शक्ति ने सारे संसार की जातियों को एकता के सूत्र में इस प्रकार बांध दिया है, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। अंग्रेजों के यातायात और संचार के साधन संसार के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। आज अंग्रेजों की प्रतिभा के कारण संसार अपूर्व रूप से एकता की ओर में बंध गया है। इस समय संसार में भिन्न-भिन्न स्थानों में जिस प्रकार के व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं, वैसे मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं हुए थे। अतएव इस सुयोग में भारत फौरन उठकर ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से जगत को अपने आध्यात्मिक ज्ञान का दान दे रहा है। अब इन सब मार्गों के सहारे भारत की यह भाव राशि समस्त संसार में फैलती रहेगी। मैं जो अमेरिका गया, वह मेरी या तुम्हारी इच्छा से नहीं हुआ, वरन् भारत के भाग्य-विधाता भगवान ने मुझे अमेरिका भेजा, और वे ही इसी भाँति सैकड़ों आदमियों को संसार के अन्य सब देशों में भेजेंगे। इसे दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। अतएव तुमको भारत के बाहर भी धर्म प्रचार के लिए जाना होगा। इसका प्रचार जगत् की सब जातियों और मनुष्यों में करना होगा। पहले यही धर्म-प्रचार आवश्यक है। धर्म-प्रचार करने के बाद उसके साथ ही साथ लौकिक विद्या और अन्यान्य आवश्यक विद्याएं आप ही आ जायेंगी। पर यदि तुम लौकिक विद्या, बिना धर्म के ग्रहण करना चाहो, तो मैं तुमसे साफ कहे देता हूँ कि भारत में तुम्हारा ऐसा प्रयास व्यर्थ सिद्ध होगा, वह लोगों के हृदयों में स्थान प्राप्त न कर सकेगा। यहाँ तक कि इतना बड़ा बौद्ध धर्म भी कुछ अंशों में इसी कारणवश यहाँ अपना प्रभाव न जमा सका।

इसलिए, मेरे मित्रों, मेरा विचार है कि मैं भारत में कुछ ऐसे शिक्षालय स्थापित करूँ, जहाँ हमारे नवयुवक अपने शास्त्रों के ज्ञान में शिक्षित होकर

भारत तथा भारत के बाहर अपने धर्म का प्रचार कर सकें। मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप हो जायेगा। आवश्यकता है वीर्यवान्, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ मिल जायें, तो संसार का कायाकल्प हो जाये। इच्छाशक्ति संसार में सबसे अधिक बलवती है। उसके सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती; क्योंकि वह भगवान् – साक्षात् भगवान् से आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमें विश्वास नहीं करते? सबके समक्ष अपने धर्म के महान् सत्यों का प्रचार करो, संसार इनकी प्रतीक्षा कर रहा है। सैकड़ों वर्षों के लोगों को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। संसार भर में सर्वत्र सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। शताब्दियों से इस प्रकार डराये जाने के कारण वे बेचारे सचमुच ही करीब—करीब पशुत्व को प्राप्त हो गये हैं। उन्हें कभी आत्मतत्त्व के विषय में सुनने का मौका नहीं दिया गया। अब उनको आत्मतत्त्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमें से नीच से नीच में भी आत्मा विद्यमान है — वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है, जिसे न तलवार काट सकती है, न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, जो अमर है, अनादि और अनन्त है, जो शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

उन्हें अपने में विश्वास करने दो। आखिर अंग्रेजों में और तुममें किसलिए इतना अन्तर है? उन्हें अपने धर्म अपने कर्तव्य आदि के सम्बन्ध में कहने दो। पर मुझे अन्तर मालूम हो गया है। अन्तर यही है कि अंग्रेज अपने ऊपर विश्वास करता है, और तुम नहीं। जब वह सोचता है कि मैं अंग्रेज हूँ, तो वह उस विश्वास के बल पर जो चाहता है वही कर सकता है। इस विश्वास के आधार पर उसके अन्दर छिपा हुआ ईश्वर भाव जाग उठता है। और वह उसकी जो भी इच्छा होती है, वही कर सकने में समर्थ होता है। इसके विपरीत, लोग तुमसे कहते आये हैं, तुम्हें सिखाते आये हैं कि तुम कुछ भी नहीं हो, तुम कुछ भी नहीं कर सकते, और फलस्वरूप तुम आज

इस प्रकार अकर्मण्य हो गये हों। अतएव आज हम जो चाहते हैं, वह है – बल, अपने में अटूट विश्वास।

हम लोग शक्तिहीन हो गये हैं। इसीलिए गुप्तविद्या और रहस्य विद्या – इन रोमांचक वस्तुओं ने धीरे–धीरे हममें घर कर लिया है। भले ही उनमें अनेक सत्य हों, पर उन्होंने लगभग हमें नष्ट कर डाला है। अपने स्नायु बलवान बनाओ। आज में जिसकी आवश्यकता है, वह है – लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और ‘मर्द’ बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसी सर्वांग सम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी – जो भी तुमको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये उसे जहर की भाँति त्याग दो, उसमें जीवन–शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दे, जो हृदय में स्फूर्ति भर दे। भले ही इन रहस्य–विद्याओं में कुछ सत्य हो, पर ये तो साधारणतया मनुष्य को दुर्बल ही बनाती है। मेरा विश्वास करो, मेरा यह जीवन भर का अनुभव है। मैं भारत के लगभग सभी स्थानों में घूम चुका हूँ, सभी गुफाओं का अन्वेषण कर चुका हूँ और हिमालय पर भी रह चुका हूँ। मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ, जो जीवन भर वहीं रहे हैं। और अन्त में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन सब रहस्य–विद्याओं से मनुष्य दुर्बल ही होता है। मैं अपने देश से प्रेम करता हूँ; मैं तुम्हें और अधिक पतित और ज्यादा कमजोर नहीं देख सकता। अतएव तुम्हारे कल्याण के लिए, सत्य के लिए और जिससे मेरी जाति और अधिक अवनत न हो जाय, इसलिए मैं जोर से चिल्ला–कर कहने के लिए बाध्य हो रहा हूँ – बस ठहरो। अवनति की ओर और न बढ़ो – जहाँ तक गये हो, बस उतना ही काफी हो चुका। अब वीर्यवान होने का प्रयत्न करो, कमजोर बनाने वाली इन सब रहस्य विद्याओं को तिलांजलि दे

दो, और अपने उपनिषदों का – उस बलप्रद, आलोकप्रद, दिव्य दर्शन शास्त्र का – आश्रय ग्रहण करो। सत्य जितना ही महान होता है, उतना ही सहज बोधगम्य होता है – स्वयं अपने अस्तित्व के समान सहज। जैसे अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए और किसी की आवश्यकता नहीं होती, बस वैसा ही। उपनिषद् के सत्य तुम्हारे सामने हैं। इनका अवलम्बन करो, इनकी उपलब्धि कर इन्हें कार्य में परिणत करो। बस देखोगे, भारत का उद्घार निश्चित है।

एक बात और कहकर मैं समाप्त करूँगा। लोग देशभक्ति की चर्चा करते हैं। मैं भी देशभक्ति में विश्वास करता हूँ और देशभक्ति के सम्बन्ध में मेरा भी एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय की अनुभव-शक्ति। बुद्धि या विचार-शक्ति में क्या है; वह तो कुछ दूर जाती है और बस वहीं रुक जाती है। पर हृदय तो प्रेरणा-स्रोत है? प्रेम असम्भव द्वारों को भी उद्घाटित कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब रहस्यों का द्वार है। अतएव, ऐ मेरे भावी-सुधारकों, मेरे भावी देशभक्तों, तुम अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करते हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तानें आज पशुतुल्य हो गयी हैं? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखों मर रहे हैं, और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखों मरते आये हैं? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढक लिया है? क्या तुम यह सब सोचकर बैठें हो जाते हो? क्या इस भावना ने तुमको निद्राहीन कर दिया है? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों में बहती है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गयी है? क्या उसने तुम्हें पागल-सा बना दिया है? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है? और क्या इस चिन्ता में विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध बिसर गये हो? क्या तुमने ऐसा किया है? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की

पहली सीढ़ी पर पैर रखा है — हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर। तुममें से अधिकांश जानते हैं, मैं अमेरिका धर्म—महासभा के लिए नहीं गया, वरन् इस भावना का दैत्य मुझमें, मेरी आत्मा में था। मैं पूरे बारह वर्ष सारे देश भर भ्रमण करता रहा, पर अपने देशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई रास्ता ही नहीं मिला। यही कारण था कि मैं अमेरिका गया। तुममें से अधिकांश, जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धर्म—महासभा की कौन परवाह करता था? यहाँ मेरे देशवासी, मेरे ही रक्त—मांसमय देहस्वरूप मेरे देशवासी, दिन पर दिन ढूबते जा रहे थे। उनकी कौन खबर ले? बस यही मेरा पहला सोपान था।

अच्छा, माना कि तुम अनुभव करते हो; पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्ति क्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य—पथ निश्चित किया है? क्या लोगों की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है? क्या स्वदेशवासियों को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकलने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है? क्या उनके दुःखों को कम करने के लिए दो सान्त्वनादायक शब्दों को खोजा है? यही दूसरी बात है।

किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्न—बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो? यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाये, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे? यदि तुम्हारे पुत्र—कलत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जायें, भाग्य—लक्ष्मी तुमसे रुठकर चली जाये, नाम की कीर्ति भी तुम्हारा साथ छोड़ दे, तो भी क्या तुम उस सत्य में संलग्न रहोगे? फिर भी क्या तुम उसके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे? जैसा कि महान् राजा भर्तृ हरि ने कहा है, 'चाहे नीति निपुण लोग निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आये या जहाँ उसकी इच्छा हो चली जाये, मृत्यु आज हो या सौ वर्ष बाद, धीर पुरुष तो वह है जो न्याय के पथ से तनिक भी विचलित नहीं होता।' क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है? बस यही तीसरी

बात है। यदि तुममें ये तीन बातें हैं, तो तुममें से प्रत्येक अद्भुत कार्य कर सकता है। तब फिर तुम्हें समाचार पत्रों में छपवाने की अथवा व्याख्यान देते हुए फिरते रहने की आवश्यकता न होगी, स्वयं तुम्हारा मुख ही दीप्त हो उठेगा? फिर तुम चाहे पर्वत की कन्दरा में रहो, तो भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को भेदकर बाहर निकल आयेंगे और सैकड़ों वर्ष तक सारे संसार में प्रतिध्वनित होते रहेंगे। और हो सकता है, तब तक ऐसे ही रहें, जब तक उन्हें किसी मस्तिष्क का आधार न मिल जाये, और वे उसी के माध्यम से कार्यशील हो उठें। विचार निष्कपटता और पवित्र उद्देश्य में ऐसी ही जबरदस्त शक्ति है।

मुझे डर है कि तुम्हें देर हो रही है, पर एक बात और। ऐ मेरे स्वदेशवासियों, मेरे मित्रों, मेरे बच्चों, राष्ट्रीय जीवनरूपी यह जहाज लाखों लोगों को जीवनरूपी समुद्र के पार करता रहा है। कई शताब्दियों से इसका यह कार्य चल रहा है और इसकी सहायता से लाखों आत्माएँ इस सागर के उस पार अमृतधाम में पहुँची हैं। पर आज शायद तुम्हारे ही दोष से इस पोत में कुछ खराबी हो गई है, इसमें एक—दो छेद हो गये हैं, तो क्या तुम इसे कोसोगे? संसार में जिसने तुम्हारा सबसे अधिक उपकार किया है, उसके विरुद्ध खड़े होकर उस पर गाली बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? यदि हमारे इस समाज में, इस राष्ट्रीय जीवन रूपी जहाज में छेद है, तो हम तो उसकी सन्तान हैं। आओ चलें, उन छेदों को बन्द कर दें—उसके लिए हँसते—हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपना भेजा निकालकर उसकी डाट बनायेंगे और जहाज के उन छेदों में भर देंगे। पर उसकी कभी भर्त्सना न करें? इस समाज के विरुद्ध एक कड़ा शब्द तक न निकालो। उसकी अतीत की गौरव—गरिमा के लिए मेरा उस पर प्रेम है। मैं तुम सबको प्यार करता हूँ, क्योंकि तुम देवताओं की सन्तान हो, महिमाशाली पूर्वजों के वंशज हो। तब भला मैं तुम्हें कैसे कोस सकता हूँ? यह असम्भव है। तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो। ऐ मेरे बच्चों, मैं तुम्हारे पास आया हूँ अपनी सारी योजनाएँ

तुम्हारे सामने रखने के लिए। यदि तुम उन्हें सुनो, तो मैं तुम्हारे साथ काम करने को तैयार हूँ। पर यदि तुम उनको न सुनो, और मुझे ठुकराकर अपने देश के बाहर भी निकाल दो, तो भी मैं तुम्हारे पास वापस आकर यही कहूँगा, “भाई, हम सब छूब रहे हैं।” मैं आज तुम्हारे बीच बैठने आया हूँ। और यदि हमें छूबना है, तो आओ, हम सब साथ ही छूबें, पर एक भी कटु शब्द हमारे ओरें पर न आने पाये।



## महान प्रेरणा स्रोत - स्वामी विवेकानंद

महापुरुष स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी 1863 को सूर्योदय से 6 मिनट पूर्व 6 बजकर 33 मिनट 33 सेकेन्ड पर हुआ। भुवनेश्वरी देवी के विश्वविजयी पुत्र का स्थागत मंगल शंख बजाकर मंगल ध्वनि से किया गया। हिन्दू मान्यता के अनुसार संतान के दो नाम होते हैं, एक राशि का एवं दूसरा जन साधारण में प्रचलित नाम, तो अन्न प्रासन के शुभ अवसर पर बालक का नाम नरेन्द्र नाथ रखा गया।

नरेन्द्र की बुद्धि बचपन से ही तेज थी। बचपन में नरेन्द्र बहुत नटखट थे। भय, फटकार या धमकी का असर उन पर नहीं होता था। तो माता भुवनेश्वरी देवी ने अद्भुत उपाय सोचा, नरेन्द्र का अशिष्ट आचरण जब बढ़ जाता तो, वो शिव शिव कहकर उनके ऊपर जल डाल देर्ती। बालक नरेन्द्र एकदम शान्त हो जाते।

वर्ष 1893 में शिकागो विश्व धर्म परिषद में भारत के प्रतिनिधि बनकर गये किन्तु उस समय यूरोप में भारतीयों को हीन दृष्टि से देखते थे। उगते सूरज को कौन रोक पाया है, वहाँ लोगों के विरोध के बावजूद एक प्रोफेसर के प्रयास से स्वामी जी को बोलने का अवसर मिला। स्वामी जी ने बहिनों एवं भाइयों कहकर श्रोताओं को संबोधित किया। स्वामी जी के मुख से ये शब्द सुनकर करतल ध्वनि से उनका स्थागत हुआ। श्रोता उनको मंत्रमुद्ध सुनते रहे। निर्धारित समय कब बीत गया पता ही न चला। अध्यक्ष गिबन्स के अनुरोध पर स्वामी जी आगे बोलना शुरू किये तथा 20 मिनट से अधिक बोले।

वर्ष 1899 में कोलकाता में भीषण प्लेग फैला, अस्वस्थ होने के बावजूद स्वामी जी ने तन—मन—धन से महामारी से ग्रसित लोगों की सहायता करके इंसानियत की मिसाल दी। स्वामी विवेकानंद ने, 1 मई, 1897 को रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। 39 वर्ष के संक्षिप्त जीवन काल में स्वामी जी ने जो अद्भुत कार्य किये हैं, वे आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे। 4 जुलाई 1902 को स्वामी जी का अलौकिक शरीर परमात्मा में विलीन हो गया।

